

शारीरकविमर्श

पण्डित मधुसूदन ओझा के ब्रह्मविज्ञान खण्ड में आर्यहृदयसर्वस्व नामक विभाग में *शारीरकविमर्श* ग्रन्थ का स्थान है। यह ग्रन्थ एक प्रकार से ब्रह्मसूत्र के प्रमुख विषयों को आधार बनाकर लिखा गया है। शरीर में जो रहता है उसका नाम शारीरक है। शरीर में जीवात्मा रहती है। अत एव शारीरक का अर्थ जीवात्मा है। शारीरकविमर्श में जो विमर्श है उसका अर्थ है विचार। इस प्रकार जीवात्मा के विचार सम्बन्धी ग्रन्थ का नाम शारीरकविमर्श है। अत एव ग्रन्थ का मुख्य विवेच्य जीवात्मा ही है।

इस ग्रन्थ के विषयवस्तु को स्पष्ट करने के लिए इसे सोलह प्रकरणों में बाँटा गया है। जिनमें अनेक विषय हैं। सर्वप्रथम ग्रन्थ के प्रारम्भ में मन्त्र एवं ब्राह्मणों के आधार पर ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। जगत् के मूल कारण को समझाते हुए-दैव, रज, आप, प्रजापति, ब्रह्म आदि तत्त्वों का विवेचन किया है। पुनः ग्रन्थ में ब्रह्म शब्द के अर्थों को कई प्रकार से निरूपण करते हुए 'ब्रह्ममीमांसा' में आत्मरूप ब्रह्म और शास्त्ररूप ब्रह्म का वर्णन किया है। 'वेद' क्या वस्तु है?, इस रहस्य को बताते हुए तत्त्ववेद और शब्दवेद नाम से वेद के दो विभागों का विशद वर्णन यहाँ मिलता है। तत्त्ववेद अग्निरूप और शब्दवेद ग्रन्थरूप है। शतपथब्राह्मण में यह सिद्धान्त है कि यह विश्व अग्नि और जल से बना है। अत एव 'अग्नीषोमात्मकं जगत्' यह कहा गया है। प्राण, वाक् और अन्नाद ये तीन वैदिकविज्ञान में अग्नि हैं। यही अग्निरूप तत्त्ववेद का संकेत यहाँ है।

वेद के अध्ययन से विप्र, ऋषि, देव आदि उपाधि की प्राप्ति होती है। तत्त्ववेद के शाखाभेद का रहस्य यहाँ विस्तार से बताया गया है। शब्दवेद के प्रादुर्भाव का वर्णन करते हुए विश्वगुरु ब्रह्मा को वेदों का उद्भावक मानते हैं। इस ग्रन्थ में ओझाजी ने ब्रह्मा से ऋषि अत्रि तक की परम्परा का वर्णन किया है। वेदप्रादुर्भाव के सम्बन्ध में ६ प्रधान मत और ४२ उस से सम्बन्धित मत को प्रमाण के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम में उपनिषद् पद का तात्पर्य तथा दर्शनशास्त्र के भेदों का विस्तृत निरूपण है। वेदान्तसूत्र का सिद्धान्त जीव और ईश्वर का व्यष्टि-समष्टि संबन्ध की चर्चा विस्तृत रूप से की गयी है। अन्य जगहों में व्यष्टि से समष्टि बनती है। जैसे एक-एक वृक्ष मिलकर वन बनता है तथा एक-एक मनुष्य मिलकर सेना बनती है। लेकिन इस ग्रन्थ में समष्टि से व्यष्टि बनी है, ऐसा प्रतिपादन है। यही इस ग्रन्थ की विशेषता है। क्योंकि समष्टि रूप ईश्वर कारण है और व्यष्टि रूप जीव उस का कार्य है। इस ग्रन्थ में गीता की व्याख्या के प्रसंग में यह कहा है कि अन्य दार्शनिक सम्प्रदाय गीता में अक्षर पुरुष का ही विवेचन किया है, जबकि ओझाजी ने गीता में अव्ययपुरुष का भी वर्णन किया है। ब्रह्म के विश्व, विश्वचर और विश्वातीत ये तीन रूप हैं और

माया, कला, गुण, विकार, आवरण और अञ्जन नाम से छह प्रकार के परिग्रह हैं। इसी क्रम में आत्मा के सात स्वरूपों के वर्णन किये हैं- निर्विशेष, परात्पर, पुरुष, सत्य, यज्ञ, विराट् और विश्व। किन्तु अन्य दार्शनिकों ने आत्मा के सात स्वरूपों में से एक-एक स्वरूप को मुख्य आत्मा के रूप में माना है। जबकि ओझाजी ने आत्मा के इन सातों स्वरूपों को स्वीकार किया है। इसके पश्चात् चिदात्मा के तीन रूपों का वर्णन है- परमेश्वर, ईश्वर और जीव। एक ही चित् के चिद्धन, चिदंश, चिदाभास नाम से भेद दिखाकर चिदाभास को जीव कहा गया है।

यह ग्रन्थ भारतीय दर्शन के नवीन आयामों को उद्घाटित करता है। इस के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार दर्शनशास्त्र की विविधता में एकरूपता को ओझाजी ने प्रतिपादित किया है।